सहज कविता

अद्यतन कविता की त्रैमासिकी

अंक-3 जौलाई-सितम्बर 1994

सम्पादक—डॉ० सुधेश

सहज कविता

त्रैमासिक
जुलाई-अगस्त-सितम्बर 1994
वर्ष—1 अंक—3

क्रम

विचार-विमर्श			2-4,16-17
सहज कविता और छन्द			5
सहज कविता की परम्परा—तारिणी चरण दास 'चिदानन्द'			8
ग़ज़ल	—	गोपाल गर्ग	9
		कशफ़ी झाँसवी	9
दोहे	—	सुधेश	10
मुक्तक	—	महेन्द्रसिंह पुंडीर	11
		सुधेश	11
कविताएँ	—	रेखा व्यास	11
		सुधेश	12
		चिदानन्द	12
गीत	—	राजकुमार सैनी	13
		महेन्द्र भटनागर	13
		दिनेश चन्द्र द्विवेदी	14
सहजकविता और कविता में सहजता—दिविक रमेश			15

अवैतनिक सम्पादक डॉ० सुधेश—प्रबन्धक सम्पादक प्रद्युम्न शर्मा
प्रकाशक—श्रीमती सुशीला शर्मा
'सहज कविता कार्यालय'—1335 पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-110067
मूल्य चार रुपये, वार्षिक सोलह रुपये। संस्थाओं के लिए बीस रुपये।

विचार-विमर्श

'सहजकविता' (अंक-1) में 'सहजकविता की आवश्यकता' शीर्षक···सम्पादकीय टिप्पणी में डॉ सुधेश ने कविता में सहजता पर सर्वाधिक बल दिया है। इस बात में सन्देह नहीं है कि पिछले दशकों में जो कविताएँ लिखी गईं, उनमें सहजता की बजाय जटिलता का बोलबाला रहा। फलतः वे अपठनीय और कृत्रिम होकर रह गईं। नए-नए अपरिचित बिम्बों, शब्दों तथा अर्थ में चमत्कार के समावेश से कविता सामान्य पाठक से दूर हो गई।···व्यक्तिवादी अज्ञेय की भाँति ही जनवादी मुक्तिबोध भी सामान्य पाठक से दूर होते गए और उनकी बहुत कम कविताएँ पठनीय की श्रेणी में शामिल की जा सकीं।

आज कविताएँ बहुत बड़ी संख्या में लिखी जा रही हैं, किन्तु उनकी लोकप्रियता निरन्तर घटती जा रही है।···इससे इस तथ्य का आभास मिलता है कि कविता की गुणवत्ता में भी अवश्य कुछ कमी रह जाती है।

डॉ० सुधेश ने अपनी टिप्पणी में कविता में गद्यात्मकता को कविता की कमी माना है। मेरे विचार में गद्यात्मकता को काव्यत्व की दृष्टि से भले ही कम माना जा सके, किन्तु लोकप्रियता की दृष्टि से उसे कम मानना युक्ति-युक्त नहीं है। ···कविता की गद्यात्मकता में अगर एक लय हो और उसका कथ्य यथार्थपरक हो, तो कोई कारण नहीं, कविता सरल होते हुए भी पठनीय और प्रभावी न बन पाए। मैं इसी यथार्थपरकता को कविता का 'ठोसपन' मानता हूँ। आज साहित्य की अन्य विधाएँ जब यथार्थ की ठोस धरती पर फल-फूल रही हैं, तो आज की कविता हवाई या तरल कैसे हो सकती है?···आज के जीवन की कविता को भी ठोस ही होना चाहिए।

मैंने अपने एक काव्य 'ठोस होते हुए' (1988) में लिखा था—"संक्षिप्तता, शब्दों के सार्थक प्रयोग, वाग्वैदग्ध्य और अनुभूति की तीव्रता आदि के कारण वह (कविता) पाठक पर सीधा प्रभाव डालने की क्षमता रहती है। शर्त यह है कि उसमें जटिलता, अत्यधिक कल्पनाशीलता और चमत्कार आदि से बचा जाए।"

कविता में 'सहजता' के साथ 'ठोसपन' भी आवश्यक है। यथार्थपरक ठोसपन के बिना जो कविता लिखी जाएगी, वह कवि सम्मेलनों में पढ़ी जाने वाली कविता की तरह मात्र सरल या तरल होकर रह जाएगी और उसमें से स्थायित्व का अंश

ग़ायब हो जाएगा। यह कविता का 'ठोसपन' ही है जो उसे दीर्घजीवी बनाता है। 'ठोसपन' के अभाव में कविता किसी अख़बार की ख़बर की तरह पढ़ते ही बासी प्रतीत होने लगती है।

—डॉ० वीरेन्द्र सक्सेना (दिल्ली)

मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि पिछले चार-पाँच दशकों में मध्यवर्गीय मठाधीशों ने अपने संकीर्ण स्वार्थों के लिए 'नई कविता' नामक जिस गद्य-कविता को प्रचारित, प्रशंसित, पुरस्कृत और महिमा-मंडित किया है, वह कृत्रिम कविता है। उससे हिन्दी के काव्य-साहित्य का बहुत अहित हुआ है। कृत्रिम कविता के कारण ही जनसाधारण के मन में हिन्दी साहित्य के प्रति अरुचि उत्पन्न हुई है। इसका साहसपूर्वक पर्दाफाश करके आपने हिन्दी भाषा और साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की है।

—चिरंजीत (दिल्ली)

'सहज' शब्द कविता के विशेषण के रूप में सबसे उपयुक्त है, क्योंकि वह कविता को कई ग़लत लेबिलों से बचाता है। कविता के साथ इस अन्याय के युग में कई ऐसे विशेषण तो उपयुक्त हैं जो समाज के अन्याय के विरुद्ध संघर्षशील साहित्य की पहचान कराते हैं, जैसे 'प्रगतिशील', 'प्रतिबद्ध', 'वाम' आदि। ये पिछले 50-60 वर्षों से हिन्दी के युयुत्सु, रचनात्मक दृष्टिकोण को वाणी देते रहे हैं, परन्तु जब कविता को शुद्ध कहा जाता है या 'अकविता' और 'निषेध' आदि के नाम दिये जाते हैं तो वे वास्तव में पलायनवादिता पर आवरण डालने वाले होते हैं। 'सहज' नाम इनसे अलग है।

मैं 'सहज' उन्हीं रचनाओं को मानूंगा जो जीवन की सच्चाई को ईमानदारी से प्रकट करती हैं, चाहे वह सच्चाई किसी आन्तरिक रिश्ते या भाव का प्रकाशन करती हो और चाहे समाज की विसंगतियों का उद्‌घाटन करती हो या उन पर आक्रोश की अभिव्यक्ति हो।

—डॉ० कृष्ण बिहारी मिश्र (दिल्ली)

"यदि पाठकों को ये कविताएँ दुरूह और ऊटपटांग प्रतीत होती हैं, तो इसका एकमात्र कारण यही है कि उनमें अभी आधुनिकतम वैज्ञानिक दृष्टि विकसित नहीं हुई है।"

'नई कविता' के कवियों की वक़ालत करते हुए ये विचार लिखे हैं, डॉ०

शंभूनाथ सिंह ने।[1] कविता में नये आयामों, प्रयोगों, विकास आदि से परहेज न होते हुए भी मैं उपर्युक्त दलील में 'एकमात्र कारण' तथा साहित्य में 'आधुनिकतम वैज्ञानिक दृष्टि' की प्रहेलिकाओं को समझ न सका। पिछली अर्ध शताब्दी में कई स्वनामधन्य कवि हुए हैं जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट कृतियों से काव्य-जगत् को योगदान दिया है; परन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि इस अवधि में बड़ी संख्या में 'दुरूह' और 'ऊटपटांग' कविताओं के प्रचलन-प्रदूषण से अधिकतर कवियों ने सामान्य पाठकों के मन में कविता के प्रति वितृष्णा, अरुचि, खीझ और घृणा ही उत्पन्न करने का अथक परिश्रम किया है।

ऐसे वितृष्णाजन्य परिवेश में 'सहज कविता' का प्रस्फुटन निश्चय ही अपनी सहज सुगंध और तृप्ति से पाठकों को कविता की ओर प्रत्यावर्त्तित कर सकेगा, ऐसी आशा है। हालाँकि इस पत्रिका में सिर्फ़ कविताएँ हैं, तथापि 'बनावटी, कोरी गद्यात्मक, संप्रेषणहीन, अभिजात'[2] कविता पर प्रश्नचिह्न लगाकर सही, सहज, स्वाभाविक और वास्तविक कविताओं को एक धरातल पर लाकर उनका खोया दाय दिलाने का डॉ० सुधेश का प्रयास संस्तुत्य है।

प्रति पतली है, पर क़ाग़ज़, छपाई, सफाई, शुद्धता आदि सराहनीय है। इसके शीघ्र मासिक बनने की कामना मैं करता हूँ। पत्रिका में सीधे-सादे, पर गहन संवेदनीय स्तर के गीत, ग़ज़ल, हाइकु, दोहे आदि को भी सम्मानजनक स्थान देना पत्रिका के हित में है। गोपीनाथ उपाध्याय, रणजीत, दिविक रमेश आदि की रचनाएँ अधिक अच्छी लगीं। हाइकु भी अच्छे हैं। परन्तु अपर्णा भट्टाचार्य की क्षणिकाएँ दुरूह और 'असहज' लगीं। संपादकीय 'सहज कविता की आवश्यकता' विचारपूर्ण, है जो कविता पर पुनर्विचार करने को प्रेरित करता है। नये उभरते या गुमनाम कवियों को काफ़ी स्थान दिया गया है पत्रिका में, यह संतोष और हर्ष की बात है।

—जशवीरसिंह रहबर (राँची)

'सहजकविता' के माध्यम से देश में सच्ची कविता वापस आस यही कामना है। आपने सहज कविता की आवश्यकता पर बहुत ही प्रभावपूर्ण, निडर और सर्वमान्य टिप्पणी की है।···आपकी बात पढ़कर यह लगा कि आज भी ऐसे लोग हैं जो कविता को समाचार, निबन्ध···से अलग उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहते हैं, कविता की लयात्मकता को पुनः स्थापित करना चाहते हैं।

—गोपाल गर्ग (अजमेर)

---

1. 'समसामयिक हिन्दी-साहित्य'; 1983 ई०; पृ० 99
2. 'सहज कविता' के प्रवेशांक के संपादकीय के अंतिम अंश में से।

सहज कविता और छन्द

'सहज कविता' के प्रथम अंक को पढ़कर कुछ कवि मित्रों ने मेरे तर्क का समर्थन करते हुए सहज कविता का लयात्मक होना आवश्यक माना। सर्वश्री चिरंजीत, मधुर शास्त्री, गोपाल गर्ग, रामस्वरूप सिन्दूर, सुरेन्द्र चतुर्वेदी, जशवीर सिंह रहबर की टिप्पणियों में यही बात कही गई है। कुछ कवियों ने छन्द की अनिवार्यता पर बल दिया, जैसे बालकवि आर्य ने। डॉ० तारिणीचरण दास 'चिदानन्द' ने गद्य में भी कविता के लिखे जाने की सम्भावना को स्वीकार किया। अनेक मित्रोंकी पत्रात्मक टिप्पणियाँ 'सहज कविता' के अंक-2 में 'विचार-विमर्श' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित की गई हैं। कुछ टिप्पणियाँ इस अंक में इसी स्तम्भ में दी जा रही हैं।

कविता में गद्य के गुणों के सदुपयोग की बात मैं प्रथम अंक में कर चुका हूँ। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि कविता के नाम पर गद्य लिखा जाए और उसे कविता मानने या मनवाने का आग्रह किया जाए। कविता और गद्य में अन्तर करना ही होगा। इस विषय पर फिर कभी विचार किया जाएगा।

यहां मैं सहज कविता के छन्द से सम्बन्ध पर विचार करना चाहता हूँ। इस उपक्रम में सम्भव है कि उन कुछ बातों की आवृत्ति हो जो मैं अपने सम्पादकीय लेखों में पहले कह चुका हूँ। सहज कविता के लिए या कविता की सहजता के लिए छन्द की उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता, पर कविता होने के लिए उसका छन्दात्मक होना अनिवार्य नहीं है। कविता का तुकान्त होना भी अनिवार्य नहीं है। संस्कृत काव्य में अतुकान्त रचनाओं की लम्बी परम्परा रही है। संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि अनेक भारतीय भाषाओं में मुक्तछन्द की रचनाएँ भी खूब लिखी गई हैं, जिनमें छन्द के नियमों को ढीला करके छन्द को उसके बंधन से मुक्त होकर अपनाया गया। इसे निराला ने 'छन्दमुक्ति' कहा था, पर यह 'छन्दमुक्ति' छन्द-बहिष्कार नहीं थी। सुमित्रानन्दन पन्त, निराला, प्रसाद, महादेवी, नरेन्द्र शर्मा, बच्चन, अंचल, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी आदि अनेक कवियों ने मुक्त छन्द की कविताएँ लिखीं। ये छन्द से नितान्त मुक्त कविताएँ नहीं हैं, पर ये छन्द शास्त्र की परिपाटी के अनुसार छन्दोबद्ध कविताएँ भी नहीं हैं, क्योंकि

छन्द के नियमों के निर्वाह में स्वतन्त्रता ली गई है।

कुछ लोग जैसे अतुकान्त कविता को बेतुकी कविता समझने और कहने की जिद करते हैं, उसी प्रकार वे मुक्तछन्द की कविता को छन्दमुक्त कविता समझने का भ्रम पाले हुए हैं। छन्द से मुक्त अथवा छन्दहीन रचना को छन्दमुक्त कहना अधिक समीचीन है। यहां पर भी कुछ लोग तर्क देंगे कि छन्दहीन रचना को कविता ही क्यों माना जाए? वह तो कोरा गद्य है और गद्यकाव्य जैसी कोई काव्य-विधा उन्हें स्वीकार्य नहीं हो सकती। मैं समझता हूँ कि कोरे गद्य को कविता के नाम पर चलाना कविता के भविष्य को अन्धकारमय करना होगा।

पर मैं फिर इस बात को दोहराना चाहता हूँ कि कविता के लिए उसका छन्दमय होना अनिवार्य नहीं है। पर इसका यह अर्थ भी नहीं लगाना चाहिए कि छन्दमय रचना श्रेष्ठ कविता नहीं होगी। छन्द में अनेक अच्छी-बुरी कविताएँ लिखी गई हैं। आशय केवल इतना है कि छन्दमयता किसी रचना के कवितापन या उसकी श्रेष्ठता की गारण्टी नहीं है।

अब बोकारो के 'अक्षत' मासिक के सम्पादक और कबि श्री बालकवि आर्य की टिप्पणी को लिया जाए। उन्होंने अपने पत्र में मुझे लिखा—"कविता में छन्द की वापसी के लिए किया जा रहा आपका यह प्रयास श्लाघनीय है।··· कविता का अपना एक मानदण्ड है छन्द, जो लयबद्धता के कारण सहज और सुग्राह्य होता है। ···फिर आपने यह भी लिखा है कि कविता को सहज होने के लिए उसका छन्दमय होना आवश्यक नहीं है। पर कविता को सहज होने के लिए लययुक्त तो होना ही चाहिए। यहाँ विरोधाभास प्रतीत होता है।" मेरा उत्तर उपर्युक्त उद्धरण में ही निहित है। जब मैंने कविता की लयात्मकता का आग्रह किया ('सहज कविता', अंक— 1) तो उसका अर्थ छन्द की अनिवार्यता नहीं हुआ। लय छन्द का मूलाधार अवश्य है, पर लय छन्द का पर्यायवाची नहीं है। छन्द के नियमों को छोड़कर जहां लय का निर्वाह किया जाता है, क्या वहां छन्दमयता की स्थिति मानी जाएगी?

यह सच है कि छन्द कविता का बहुत उपयोगी तत्व है, और मैं कविता में छन्दमयता का विरोधी नहीं और यह भी मानता हूं कि कुशल कवियों ने छन्द में बहुत सारी उत्तम कविताएँ लिखी हैं। पर इसके साथ यह भी कटुसत्य है कि छन्द के निर्वाह के बावजूद हिन्दी में अनेक कवियों ने घटिया रचनाएँ रची हैं। इस प्रकार की कविताओं के लिए रीतिकालीन कवियों की प्रायः आलोचना की जाती है और इस प्रसंग में विभिन्न युगों के दरबारी कवियों का उल्लेख किया जाता है। दरबारी कवि हरयुग में होते हैं। केवल दरबारों के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। पहले राजा और सामन्त दरबार लगाते थे। आजकल बड़े-छोटे नेताओं और सत्ता में भागीदार छोटे-बड़े दलालों के दरबार हैं। छन्दोबद्ध कविता के स्वर्ण युग छायावादी दौर में ऐसी ढेरों कविताएँ लिखी गईं जो अपनी छन्दमयता के

बावजूद जीवित नहीं रहीं, जबकि निराला की 'जुही की कली' तत्कालीन आलोचकों की कटु आलोचना के बावजूद आज भी कविता की सुगन्ध बाँट रही है।

आशय यह है कि सहज कविता के लिए छन्द अत्यन्त उपयोगी विधि होते हुए भी सहजता की अनिवार्य शर्त नहीं है। छन्द की रूढ़ियों में बँधकर कवि की रचनाशीलता कभी बाधित होती है और वह असहज हो सकता है। छन्दशास्त्र के ज्ञाता और कुशल कवि चाहे छन्दनिर्वाह में असहज न होते हों। लय के निर्वाह में कवि को स्वतन्त्रता होती है और उसकी रचनाशीलता अबाधगति से आगे बढ़ती है। इसीलिए मैं कविता में छन्द की तुलना में लय को अधिक महत्वपूर्ण समझता हूं।

तर्क दिया जा सकता है कि छन्द का कोई निश्चित ढाँचा नहीं होता। प्रयोगशीलता से उसमें अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। इसी प्रक्रिया से छन्दों के अनेक भेद आविष्कृत हुए। सफल कवियों की रचनाओं के आधार पर छन्दों के नामकरण तक हुए, जैसे प्रसाद की प्रसिद्ध कृति 'आँसू' की लय व्यवस्था को 'आँसू छन्द' कहा गया। इस प्रकार छन्द काव्य रचना के लिए कोई बन्धन नहीं ठहरता। इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि कवि अपनी प्रयोगशीलता से जो भी लयव्यवस्था निश्चित करता है उसके तिर्वाह से ही उसके काव्य-कौशल का पता चलता है। वह लयव्यवस्था उसके लिए छन्द का ही दर्जा रखती है। उस लयव्वस्था का निर्वाह न कर पाने पर कवि अनाड़ी ही कहा जाएगा।

सहज कविता केवल छन्दोबद्ध कविता तक सीमित नहीं है। अनेक शैलियों में आजकल सहज कविताएँ लिखी जा रही हैं, जैसे मुक्त छन्दशैली में, गीत, लोकगीत शैलियों में, ग़ज़ल, दोहा, हाइकु, मुक्तक आदि के रूप में। वे तुकान्त और अतुकान्त दोनों हैं। कोई साहित्यिक विधा विकास की प्रक्रिया में जिस स्थिति तक पहुँच जाती है, उससे पीछे उसे लौटाना न काम्य है, न सम्भव। उसकी ज़मीन पर खड़े होकर ही उसमें कुछ नया जोड़ा जा सकता है। हिन्दी कविता ने आजकल जो भी स्थिति प्राप्त कर ली है, उसे पचास या सौ साल पीछे लौटाना मुश्किल है। वह स्थिति चाहे कविता के पतन की स्थिति है। आज की हिन्दी कविता को उसकी विविधता और अनेकरूपता में ग्रहण करना होगा—विविधता विषयों की और अनेकरूपता शैलियों की। किसी एक शैली पर बल देकर आज की कविता की शिराओं में नवीनरक्त का संचार नहीं किया जा सकता। इसलिए केवल छन्द की दुहाई देने से काम नहीं चलेगा। छन्द का प्राण लय है। तो क्यों न कविता में लय की महत्ता को समझा जाए, जिसके प्रयोग में अनन्त सम्भावनाएँ हैं। इन सम्भावनाओं पर फिर विचार किया जाएगा।

—सुधेश

सहज कविता की परम्परा

मैंने अपनी सहज कविताएँ (सरल गद्य कविताएँ) सन् 1953 में ही लिखी थीं, जो कि 1954 में 'मन की बातें' के रूप में प्रकाशित हुईं। तत्कालीन एक अध्यापक ने कहा, "आपकी कविताएं इतनी सरल भाषा में लिखी गईं कि शायद ही कोई उन्हें पसन्द करे।" पर छपने के बाद गुरुवर डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा—"आपकी रचनाओं की स्पष्टवादिता मुझे बहुत ही आकर्षक लगी।" उसके बाद साठोत्तरी कविता आगे बढ़ी। मराठी कविता की गन्दी गाली-गलौज के प्रभाव से हिन्दी कविता जब ध्वस्त होने लगी, भाई रवीन्द्र भ्रमर ने 1968 ई० में 'सहज कविता' नाम से एक संकलन निकाला था। इसमें कई आलोचकों तथा कवियों के मत उद्धृत हुए हैं। कुछ कवियों की कविताएँ संकलित हुई हैं। यह संकलन अपने युगजीवन के सर्जनात्मक दायित्व को अपने ऊपर लेता है, सुसंगठित शिल्प की खोज का प्रयत्न करता है, पर सहज के साथ क्लिष्ट (अस्पष्ट) कविताओं के कारण सफल नहीं हो पाता। इसे संकलक विषम काव्य-परिस्थितियों में कविता की खोज मानते हैं (स्वर कुछ अज्ञेय जी का-सा लगता है)। इसकी सीमाएँ हिन्दी में प्रकट हो चुकी हैं।

युग की गूढ़ तथा जटिल अनुभूतियों की अभिव्यक्ति भी गूढ़ तथा जटिल होती है। बौद्धिक कविता, लम्बी कविता, महाकाव्यात्मक दीर्घ कविताओं का जन्म इन जटिल अनुभूतियों से है। इनके परिप्रकाश के लिए वैयक्तिक प्रतीकों, रूपकों, रूपकल्पों (बिम्बों) तथा आद्यबिम्बों की ज़रूरत पड़ती है। मेरी लिखी 'इतिवृत्त', 'अन्वेष', 'आत्मनेपदी' तथा 'चतुष्पदी' आदि कविताएँ इस प्रकार की हैं। परन्तु हमेशा कविमानस बौद्धिकता और शिल्पात्मकता में आबद्ध न रहकर स्वाभाविक या सहज स्रोत के लिए प्रकाशित होना चाहता है। इसके फलरूपरूप लघु भावनाओं की कविताएँ, लघुक्षण की संवेद्य कविताएँ उत्पन्न होती हैं। इनमें बिजली की कड़क नहीं, दीपक की लौ का मृदु प्रकाश होता है। ये सहज अनुभूति की कविताएँ साधारणतः सहज होती हैं, परन्तु सर्वदा सरल नहीं। उनमें भी ध्वन्यात्मक अर्थ होते हैं। उनका एक अनेक में बँट जाता है। सहज कविता अगर शाश्वत होना चाहे तो उसे पारदर्शी बनना पड़ता है, जैसे अथाह स्वच्छ जल में कोई वस्तु नज़र आती हो, परन्तु असली गंभीरता नज़र न आती हो।

—तारिणी चरण दास 'चिदानन्द'

ग़ज़ल

जब ख़ुद से तनहा होगा,
तब कोई रास्ता होगा।
अपने हक़ की बात तो कर,
हद से हद रुसवा होगा।
बहुत प्यास है मिट्टी में
कभी यहाँ दरिया होगा।
सब सहने की आदत है
इससे बदतर क्या होगा ?

—गोपाल गर्ग

सुख दिये यन्त्रणा के लिए,
गर्व दे याचना के लिए।
शब्द भी तो नहीं चाहिए,
नेह की कामना के लिए।
झर गये फूल तक वृक्ष के—
वंश की सर्जना के लिए।
मौन ही क्रूरतम अस्त्र है
विश्व में यातना के लिए।

—गोपाल गर्ग

ग़म ले के दे दुआएँ वो साइल अमीर है,
मोती न दे सके तो समन्दर फ़क़ीर है।
हम आज अपनी मौत को भूले हैं इसलिए
क़ातिल की हर कमान में सोने का तीर है।
गरदूँ पै जैसे टूटे सितारे की रौशनी,
मुफ़लिस के दिल पै ऐसी ख़ुशी की लकीर है।
दौलत ने हमको इस तरह तक़सीम कर दिया
जो ख़ाली हाथ है वही बन्दा हक़ीर है।
'कशफ़ी' रहे-वफ़ा में भटकने का ग़म नहीं,
जब तक हमारे साथ सदा-ए-ज़मीर है।

—कशफ़ी झाँसवी

दोहे

खुद मर लो जी लो यहाँ जो कर लो सो आप,
दूजे की आशा तको सिर्फ मिलेगा ताप।

जब तक चलती साँस है खेलो जीवन खेल,
चाहे सपने बेच लो चाहे बेचो तेल।

इस दुखिया संसार में नहीं दुखों का अन्त,
यदि हम उनको बाँट लें होगा वही वसन्त।

चाहे वाणी मुखर हो चाहे हो अनबोल,
हर दिल में मुझको मिला देखा प्यार टटोल।

अधर मौन पर कह गये सब कुछ तेरे नैन,
नैनों की भाषा मगर समझें केवल नैन।

निर्दयता की बाढ़ में डूब गया संसार,
केवट की नैया खड़ी वही लगाये पार।

क्या दिल्ली क्या आगरा बाराणसि अजमेर,
उत्तर में तीतर वही दक्षिण वही बटेर।

अब अर्जुन के तीर पर चिपकी उसकी आँख,
इधर द्रौपदी-भोग है उधर मीन की पाँख।

सुबह मिली वरदान-सी शाम न हो अभिशाप,
जीवन दर्पण-सा विमल मरण न हो पर पाप।

ज़ोर ज़ुल्म करता रहा सुनी नहीं फरियाद,
लेकिन राजा सोच ले वक्त बड़ा जल्लाद।

हाथी और सियार में नहीं रह गया फ़र्क़,
अंगूरी तालाब में कण्ठ हो गये ग़र्क़।

एक कबूतर, हंस वह किन्तु न आये बाज़,
सुन्दर चिड़िया चाहिये टूट पड़ेंगे बाज़।

इच्छाएँ तो बहुत हैं मन का सिन्धु अथाह,
छोटी से छोटी मगर इच्छा उठी कराह।

मैं न रहूँगा, रहेगा यों ही यह संसार,
हाय हाय फिर किसलिए क्यों यह हाहाकार।

—सुधेश

मुक्तक

आँखें भटकती राह पर पाती नहीं हैं,
वह दीखती मंज़िल निकट आती नहीं है,
हैं सूरतें तो दीखती लाखों करोड़ों,
इंसान की सूरत नज़र आती नहीं है।
जो बाग उजड़ा हो उसे वीरान कहते हैं,
जो हिला दे ज़िन्दगी तूफ़ान कहते हैं,
जो काट कर जड़ फूल पाना चाहता है
आज के युग में उसे इन्सान कहते हैं।
चाँद-सूरज रोज़ आते रोज़ ढलते हैं,
रोज़ उनके दान से व्यापार चलते हैं,
चाँद-सूरज ने मगर यह नहीं पूछा कभी
क्यों तिमिर में जुगनुओं के दीप जलते हैं।

—**महेन्द्रसिंह पुंडीर** (देहरादून)

सारी दुनिया जाने कब से मौन है,
जो लिखता हूँ उसको पढ़ता कौन है?
वक्त लगायेगा जब कस कर झाँपड़,
देखूँगा चुप रहता कब तक कौन है?

—**सुधेश**

कविताएँ

वह क्रोध

अवमानना
जिसे मैं समझी
तुम्हारा क्रोध
पता चला
नहीं करना चाहते थे
समय से पहले
अपने प्यार का इज़हार।

—**रेखा व्यास** (दिल्ली)

शीशे की धार

दुनिया लोहा
दिल शीशा
टूटा जब तोड़ रहा था
अभिमानी टीलों के सिर
जूतों से चटियल बना रहा था
ऊँची नाकें
उजले मुखड़े करता बेनक़ाब।
लगता है
शीशे पर धार लगानी होगी
काट सके जो लोहा।

—सुधेश

पाठशाला

नीम की छितराई छाया में
टूटी कुर्सी पर
फटी धोती पहने
हाथ में बेंत लिए
कभी ऊँघते···कभी मुँह बाये
ग्राम शिक्षक बैठे हैं,
और सामने
मस्तक पर खड़िया पोते
ओं श्री गणेशाय नमः कहते
बच्चे पढ़ रहे पाठ
भूखों सड़ने का
पर गाते हैं देश वन्दना।
भीगी बिल्ली भाग रही है
लँगड़ा कुत्ता भौंक रहा है
और बबूल की सूखी डाली पर
कजलौटा एक चिर्र-चिर्र करता है।

—तारिणी चरण दास 'चिदानन्द'

गीत

टूटे कहाँ कहाँ हम बिखरे
साबुत थे अब टुकड़े-टुकड़े ।

क्षतविक्षत है तन भी मन भी
ढलता यौवन क्या जीवन ही,
इस उसने कुचला है कितना
कौन पराया कौन है अपना,
बढ़िया मखमल का था सपना
आज हुआ है चिथड़े चिथड़े !

किस से क्या कहना है बस अब,
सुनते ही रहना है जब तब,
सहते ही जाना पर कब तक
अगुआ थे, अब पिछड़े पिछड़े ।

—राजकुमार सैनी

आज छाई है घटा,
काली घटा !
महीनों की तपन के बाद
अहर्निश तन-जलन के बाद
हवाओं से लिपट लहरा उठा
ऊमस भरा वातावरण-आँचर
किसी ने डाल दी तन पर
सलेटी बादलों की रेशमी चादर !
मोह लेती है छटा
मोक्ष देती है घटा,
काली घटा ।

—महेन्द्र भटनागर (ग्वालियर)

तुम मदमाते मधुमासों की बात कर रहे
जलते हुए क्षणों की पीड़ा बस्ती झेल रही है।
साँसें आज बहुत सहमी हैं
ज़हरीला परिवेश हो गया,
'सोन चिरैया' कहलाने—
वाला गीधों का देश हो गया,
दिया जलाने वाले सब अपदस्थ हो गये
उल्लू की पीढ़ी सिंहासन से खेल रही है।
किश्तों में बिक रहा हिमालय
आसमान नीलाम हो रहा,
सिर धुनते रह गये मनीषी
कौआ जी का नाम हो रहा,
राजहंस संन्यास हेतु मजबूर हो गये
मानसरोवर में भैंसों की ऐसी रेलमपेल रही है।
सिंदूरी शामों की शामत
दुग्ध-धवल चाँदनी विकल है,
गंदे नाले की समता में
तोला जाता गंगा-जल है,
प्यासे खेतो, मानसून की आशा छोड़ो
बादल के नथुनों में अदृश्य नकेल रही है।

—**दिनेश चन्द्र द्विवेदी** (उरई)

कविता-प्रेमियों से

युवा कवियों, कविता-प्रेमियों से आग्रह है कि वे 'सहज कविता' को जीवित रखने के लिए वार्षिक सदस्य बनें, अपने मित्रों को सदस्य बनवाएँ और सुरुचिपूर्ण विज्ञापन भिजवाएँ। सदस्यता शुल्क सम्पादक को मनीआर्डर से भेज सकते हैं। नवप्रकाशित काव्य संग्रह, कविता केन्द्रित आलोचनात्मक पुस्तकें समीक्षा के लिए आमन्त्रित हैं। आपकी प्रतिक्रियाओं, टिप्पणियों का स्वागत होगा।

—**सम्पादक**

सहज कविता और कविता में सहजता

डॉ० सुधेश के सम्पादन में 'सहज कविता' पत्रिका का प्रकाशन निस्सन्देह कविता के संदर्भ में सहजता की दृष्टि से विचार करने को बाध्य करता है। कविता पर बात करते समय मैं स्वयं कितने ही वर्षों से कविता की सहजता पर बल देता आया हूँ। यही माँग हिन्दी के वरिष्ठ कवि और सॉनेट जैसे अनुशासन के सहज साधक त्रिलोचन की भी रही है। मतलब यह कि सहजता की माँग समय-समय पर उठती रही है। लेकिन व्यवहार में जहाँ सहज कविता उपलब्ध होती रही है वहाँ···पूरी हठ और पूर्वाग्रह के साथ असहज और इसीलिए कठिन कविता का भूत भी खड़ा करने का प्रयत्न होता रहा है और सुविधाएँ (प्रचार-प्रसार की) रहने पर वैसी ही कविता को हिन्दी की मुख्य धारा की कविता भी सिद्ध करने का प्रयास रहा है। यह विडम्बना ही है कि·· हिन्दी की सहज कविता और उसके रचयिता हाशिए पर या उसके भी बाहर देखे जाते हैं।···

ऐसा नहीं है कि सहज कविता का हिन्दी में कोई सुदृढ़ इतिहास या परम्परा नहीं है लेकिन यदि पिछले 15-20 वर्षों की कविता पर ईमानदारी से ध्यान केन्द्रित किया जाए तो सहजता और कृत्रिमताजन्य कविता का द्वन्द्व स्पष्ट देखने को मिलेगा। बनावटी या हृदय अनुभवों को खास शब्दावली और कुछ खास साँचों में ढालकर कविता की तरह पेश करने और उसे गुटीय तरीके से स्थापित करने की हरकतें उस समय में कुछ ज्यादा ही हुई हैं। लेकिन सहज कविता भी···पूरे परिदृश्य पर अपना रंग चढ़ाती चली गई है। यहाँ तक कि उसके रंग से आक्रान्त होकर बड़े-बड़े मान्य आलोचक तक (भले ही अपनी भेदनीति को बरकरार रखते हुए) सहज कविता और उसके रचनाकारों को मानने को बाध्य हुए। कवि त्रिलोचन की महत्त्वपूर्ण खोज हुई है। और यह कहकर भी कहीं-न-कहीं खोजक के रूप में अपनी ही पीठ थपथपाने की नीयत बनी रही है।

आज हम देखते हैं कि···सहज हिन्दी कविता अपनी ऊर्जा अपने लोक से ले रही है।···जिसे कविता में देसीपन कहा जा रहा है—वस्तुत: वही उसकी शक्ति है।···उसकी मौलिक खूबियाँ बहुत हद तक लोकतत्त्वों के कारण ही आई हैं। इसके लिए कवियों का बहुत ही आत्मीय ढंग से विस्तृत जीवन के बहुत छोटे-छोटे

सामान्य अनुभवों के भी महत्त्व को मानकर चलना और उन्हें काव्यानुभव के रूप में ग्रहण करना उत्तरदायी है। आज जेनुइन कवियों में दिखने वाली उन्मुक्तता सहज कविता की दिशा में बढ़ने का सशक्त कारण है। वह उन्मुक्तता जीवनजगत के प्रति निरपेक्षता या निर्वेद नहीं है, बल्कि—अपनी निष्ठा और अपने विश्वास की प्रतिष्ठा है। अपने होने का जगत के होने में सहज विलयन है।···इस सामान्य किन्तु ऊँची भूमिका से निःसृत रचना असहज हो ही नहीं सकती।···

कविता में एक संगीत निहित रहता है और वह साहित्यिक गद्य में निहित संगीत से अधिक मुखरित भी होता है, यह तो मैं मानता हूँ, लेकिन सहज कविता अनिवार्यतः शाब्दिक लययुक्त कविता ही होती है ऐसा मानने से पहले खूब विचार कर लेना होगा। जिसे हम लय कहते हैं क्या वह वही है, जिसे हम जानते हैं और जिसकी आदत हमारे कानों को है या वह वह भी हो सकती है जिससे अभी हम अनभिज्ञ हैं, जिसकी हमें आदत नहीं है?

मैं यह भी मानने को तैयार नहीं हूँ कि एक कवि हमेशा ही सहज कविता लिखता है, जैसे यह नहीं कहा जा सकता कि एक कवि की सब रचनाएँ समान रूप से उत्कृष्ट होती हैं। हाँ, यह ज़रूर है कि एक कवि के लिखे का अधिकांश या बड़ा अंश सहज और उत्तम हो। अतः खोज सहज कविता की की जानी चाहिए। यदि ऐसी (एक दो ही सही) कविता उन कवियों के यहाँ भी मिलती हैं जो असहज या कृत्रिम कहे जा सकते हैं, तो उन्हें भी अपने विचार के दायरे में लाना होगा।

—**डॉ० दिविक रमेश** (दिल्ली)

कविता में छन्द की वापसी के लिए किया जा रहा आपका यह प्रयास श्लाघनीय है। विगत तीन दशकों से कविता के नाम पर किये जा रहे बलात्कार से ढेर सारी वर्णसंकर कविताओं का जन्म हो चुका है।···कविता का अपना एक मानदण्ड है—छन्द, जो लयबद्धता के कारण सहज और सुग्राह्य होता है।···आपने लिखा है कि 'कविता को सहज होने के लिए उसका छन्दमय होना आवश्यक नहीं है। पर कविता को सहज होने के लिए लययुक्त तो होना ही चाहिए।' यहाँ विरोधाभास प्रतीत होता है। सच तो यह है कि यदि लय छन्द का मूलाधार है तो कविता छन्दमय होगी ही, क्योंकि कविता का लययुक्त होना आवश्यक शर्त है।

—**बालकवि आर्य** (बोकारो)

मैं आपके इस विचार से सहमत हूँ कि पिछले कुछ दशकों में कृत्रिक कविता अधिक लिखी गई, लेकिन आपने कविता को वर्गों में बाँधने का जो उपक्रम किया है, वह मुझे असहज लगा। कविता में कथ्य और शिल्प की सहजता तो होनी चाहिए लेकिन अनिवार्य नहीं कि वह सामान्यजन के लिए ही हो और कम्युनिस्टों द्वारा रूढ़ हुए शब्द जनोन्मुखी हो। —**रामस्वरूप सिन्दूर** (कानपुर)

'सहज कविता' का प्रवेशांक मिला। मन को अच्छा लगा। यह एक अच्छी बात है कि आप कविता के क्षेत्र में मुक्तमन से सहज और स्वाभाविक कविता के पक्षधर हैं।···हिन्दी कविता आज 'छन्दोबद्ध' और 'छन्दमुक्त' दो खेमों में विभाजित है। छन्दमुक्त नई कविता के हामी छन्दोबद्ध कविताओं के प्रति हेय दृष्टि और उपेक्षा-भाव अपनाते हैं, जब कि छन्दोबद्ध कविताओं के पक्षधर छन्दमुक्त कविताओं को काव्य ही नहीं मानते। ये दोनों अपनी-अपनी तरह के अतिवादी हैं। अतिवादी व्यक्ति वास्तविकता से हमेशा कटा हुआ होता है। आपका दृष्टिकोण इस संदर्भ में उदार प्रतीत होता है, क्योंकि आप दोनों तरह की शैलियों के प्रति सहज और सकारात्मक दृष्टि अपना रहे हैं। 'सहज' शब्द बहुत पुराना है तथापि आज भी इसमें इतनी ताज़गी है कि किसी नए-से-नए शब्द में भी नहीं है। हिन्दी में कबीर, निराला और त्रिलोचन इसी सहजता के लिए अविस्मरणीय हैं। 'साधो सहज समाधि भली' से लेकर आपकी 'सहजकविता' की पत्रिका तक इस सहजता का एक सुदीर्घ सिलसिला मेरे मानस में ऐसी विम्बावली की सृष्टि कर रहा है जो जितनी आदिम है उतनी ही अद्यतन भी।

—**राजकुमार सैनी** (दिल्ली)

'सहजकविता' का पहला अंक मिला। पढ़ा, अच्छा लगा! विशेषकर आपका सम्पादकीय। लय के सूत्र को आपने अच्छा पकड़ा। 'सहजकविता' के शास्त्र की रचना करने की आपकी कोशिश अच्छी लगी।···कविता मात्र सहज होती है। प्रयास करके सहज कविता नहीं हो सकती। नारों को, विचारधारा को आरोपित करके जो कविता लिखी जाएगी, वह कृत्रिम ही होगी।···आज सबसे बड़ा आलोचना कार्य कविता को कविताहीनता से अलगाना है।

—**डॉ० रामशंकर द्विवेदी** (उरई)

आज के अकविता-युग में 'सहजकविता' की पहल के लिए आपको पूरे आत्मीय-भाव से अपनी शुभकामना देता हूँ।···सम्पादकीय की गहराई, साफ़गोई और साहित्यिक दृष्टि के लिए आपकी जितनी तारीफ़ करूँ, कम है। आज कविता अनेक मकड़जालों में जाली कवियों के हाथों फँसी है, उसकी सहज मुक्ति के लिए···मेरी आन्तरिक मंगल-कामना।

—**रमानाथ अवस्थी** (दिल्ली)

SAHAJ KAVITA, A HINDI QUARTARLY
R. No. 5/AL/1993

हिन्दी के सुपरिचित कवि सुधेश के कृतित्व

पर केन्द्रित

राजस्थान की प्रसिद्ध त्रैमासिक पत्रिका

तटस्थ

का संग्रहणीय विशेषांक शीघ्र प्रकाश्य

सम्पादक—कृष्णबिहारी सहल

जशवीर सिंह रहबर

इस विशेषांक के आकर्षण प्रसिद्ध आलोचकों, रचनाकारों—
रमेश कुन्तल मेघ, तारिणी चरण दास, इन्दुप्रकाश पाण्डेय, रामदरश मिश्र, धर्मेन्द्र गुप्त, देवेश ठाकुर, ललित शुक्ल, राजीव सक्सेना, पूर्णचन्द्र टण्डन, कृष्ण बिहारी मिश्र, सुन्दरलाल कथूरिया, नारायण दास समाधिया, रामशंकर द्विवेदी, ज्ञानप्रकाश विवेक, सुखवीर सिंह, अरुण प्रकाश मिश्र, हेतु भारद्वाज आदि के लेख, समीक्षाएँ और टिप्पणियाँ।

तथा

सुधेश का आत्मविश्लेषण 'मेरी रचना-प्रक्रिया'।

सम्पर्क—कृष्ण बिहारी सहल, पुलिस लाइन्स के पीछे, सीकर,
(राजस्थान) 332001

सहजकविता-कार्यालय, 1335 पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-110067

तरुण प्रिंटर्स, रोहताश नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित।

आवरण-राजेश शर्मा

प्रकाशक श्रीमती सुशीला शर्मा